अटल बिहारी बाजपेयी इतने महान थे तो आडवाणी इतने बुरे कैसे हो गए?

अटल तिवारी की विशेष टिप्पणी

अटल बिहारी बाजपेयी और लालकृष्ण आडवाणी ने अपना राजनैतिक सफर लगभग एक साथ शुरू किया था। दोनों जनसंघ की स्थापना से जुड़े रहे। आगे चलकर देश में पहली गैर कांग्रेसी जनता पार्टी की सरकार मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी तो दोनों उस सरकार में मंत्री बने। समय से पहले ही जनता पार्टी सरकार का अंत हो गया तो दोनों ने मिलकर 1980 में भारतीय जनता पार्टी की नींव डाली। अटल बिहारी बाजपेयी अध्यक्ष बने तो आडवाणी ने महासचिव की जिम्मेदारी निभाते हुए पार्टी को आगे बढ़ाने में मेहनत की। अगले आम चुनाव 1984 में शिरकत करते हुए पार्टी ने दो सीटों पर अपना खाता खोला। अटल बिहारी बाजपेयी के बाद आडवाणी अध्यक्ष बने। बाजपेयी के नेतृत्व वाली उदारवादी रणनीति सफल होते न देख हिन्दुत्व के नाम पर हिन्दू कट्टरता को बढ़ावा देने का फैसला लिया। इस फैसले के आधार पर आडवाणी संगठन को लेकर आगे बढ़े। इसी दरमियान बोफोर्स का जिन्न बाहर आ गया। वीपी सिंह ने कुछ दलों को मिलाकर राष्ट्रीय मोर्चे का गठन किया। आम चुनाव हुए तो आडवाणी के नेतृत्व में भाजपा भी जोशो खरोश के साथ मैदान में उतरी। उसने 85 सीटों पर कब्जा जमाया। भाजपा और वामदलों के सहयोग से वीपी सिंह ने सत्ता संभाली। करीब एक साल बाद अगस्त 1990 में उन्होंने मंडल कमीशन की सिफारिशें लागू करने का ऐलान किया तो देश के एक बड़े तबके में आक्रोश फैल गया। बढ़ी संख्या में युवा सड़कों पर उतर आए। लोगों में वीपी सिंह सरकार के प्रति नाराजगी देख उसका राजनीतिक लाभ उठाने की नीयत से आडवाणी ने सोमनाथ से अयोध्या के लिए रथ यात्रा शुरू कर दी। उन्होंने संगठन का मुख्य नारा राम मंदिर आंदोलन बना लिया। हालांकि वह बीच में ही गिरफ्तार कर लिए गए, लेकिन इस यात्रा ने आडवाणी का राजनीतिक कद काफी ऊपर पहुंचा दिया। उनकी इस यात्रा से संगठन को भारी लाभ हुआ। अगले आम चुनाव में जहां उसके खाते में 120 सीटें आ गिरीं वहीं उत्तर प्रदेश समेत कई राज्यों में भाजपा की सरकार बन गई।

आडवाणी की यात्रा ने बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक तनाव भड़काया, जो बाबरी मस्जिद के विध्वंस के साथ अपने चरम पर पहुंचा। बड़े पैमाने पर समाज का विभाजन हुआ। आडवाणी जहां इस यात्रा का नेतृत्व कर रहे थे वहीं उसके इंतजामिया नरेन्द्र मोदी थे। इस यात्रा से हुए ध्रुवीकरण का इतना लाभ मिला कि उसने करीब आठ साल बाद केन्द्र में भाजपा की सरकार बनवा दी। इससे पहले उत्तर प्रदेश समेत कुछ राज्यों में तो वह सत्तासीन हो ही चुकी थी। इसका काफी हद तक श्रेय आडवाणी को गया। इसी दरमियान मुरली मनोहर जोशी अध्यक्ष बने वहीं उनके बाद फिर आडवाणी ने कमान संभाल ली। इस सफलता को देखते हुए भाजपा की राजनीति हिन्दुत्व और हिन्दू कट्टरता के आसपास ही केन्द्रित हो गई। संघ से दीक्षित बाजपेयी जहां परदे के पीछे रहकर इन सभी मसलों पर अपनी मौन सहमति देते वहीं आडवाणी मुखर रूप से पार्टी फ्रंट पर अमलीजामा पहनाते। दोनों की जोड़ी भाजपा को आगे बढ़ाने में लगी रही। साथियों को साथ लेकर चलती रही। नए लोगों को जोड़ती रही। संगठन में बौद्धिक लोग भी जुड़े, इसके लिए प्रयास करती रही। इसी प्रयास से आडवाणी अपने दूसरे अध्यक्षीय कार्यकाल में हुए आम चुनाव 1996 व 1998 में सीटों की संख्या क्रमश: 161 और 182 तक पहुंचाने में कामयाम रहे। कामयाबी की इसी मंजिल ने केन्द्र में भाजपा की सरकार बनवाने में मदद की। इसी बीच गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री केशुभाई पटेल का स्वास्थ्य खराब रहने लगा और संगठन की हालत कमजोर पड़ने लगी तो अटल-आडवाणी ने नरेन्द्र मोदी को गुजरात का मुख्यमंत्री नियुक्त कर दिया। फिर 2002 में गोधरा कांड के बाद गुजरात में बड़े पैमाने पर दंगे हुए और मुसलमानों को चुन चुन कर निशाना बनाया तब अटल ने गुजरात का दौरा किया। मोदी को राजधर्म का पालन करने की नसीहत दी। इतना ही नहीं वहां से लौटने के बाद उन्होंने मोदी को हटाने का मन बना लिया था, लेकिन तब मोदी के लिए आडवाणी संकट मोचक बने। गोवा में आयोजित पार्टी के राष्ट्रीय महाधिवेशन में रणनीति के तहत मोदी ने इस्तीफे की पेशकश की तो आडवाणी के प्रयास से लगभग पूरी राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने मोदी की पेशकश को ठुकरा दिया। इस संबंध में एक प्रस्ताव भी पारित कर दिया। इस हालत में अटल बिहारी

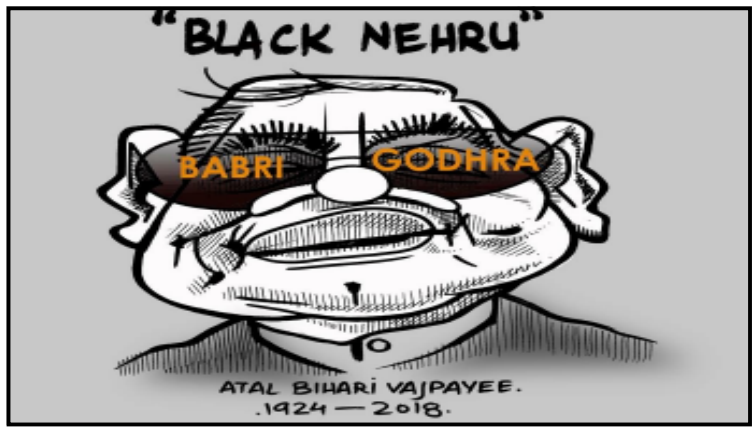

बाजपेयी को अपने कदम पीछे खींचने पड़े। इस तरह आडवाणी के प्रयास से मोदी मुख्यमंत्री की कुर्सी पर आसीन रहे और तब तक आसीन रहे जब तक 2014 में प्रधानमंत्री नहीं बन गए। आडवाणी ने अटल के साथ मिलकर जो नींव डाली थी उस पर मोदी, राजनाथ से लेकर अब अमित शाह तक महल खड़े कर रहे हैं। यहां इस ब्योरा को देने का उद्देश्य यह है कि जिस तरह अटल बिहारी बाजपेयी का योगदान भाजपा को खड़ा करने में है उससे कहीं कम योगदान आडवाणी का नहीं है बल्कि संख्या जिताऊ के हिसाब से कहीं ज्यादा है।

मसला यह है कि जिस तरह से भाजपा के संस्थापक अध्यक्ष और फिर प्रधानमंत्री रहे अटल बिहारी बाजपेयी को समूची भाजपा और मौजूदा प्रधानमंत्री मोदी की ओर से श्रद्धांजलि दी जा रही है। उन्हें अजातशत्रु बताया जा रहा है। उससे किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। यह हिन्दुस्तान की एक तरह से परंपरा है कि जब कोई दिवंगत होता है तो वह महान हो जाता है। यह सही है या गलत इस पर बहस हो सकती है। जबकि सच्ची श्रद्धांजलि यह होती है कि उस शख्स के अच्छे कामों का अगर बड़े पैमाने पर उल्लेख किया जा रहा है तो उसके गलत फैसलों अथवा नीतियों का भी जिक्र किया जाना चाहिए। खैर यह भाजपा का अंदरूनी मसला है कि वह अपने नेता को किस तरह से याद कर रहे हैं। लेकिन यहां गौर करने वाली बात यह है कि अगर मोदी और भाजपा के लिए अटल बिहारी बाजपेयी महान नेता थे तो संगठन को यहां तक पहुंचाने के लिए उनसे कहीं अधिक योगदान देने वाले लालकृष्ण आडवाणी इतने बुरे कैसे हो गए कि कथित रूप से ओल्ड एज होम पहुंचा दिए गए। सवाल उठता है कि जिस तरह से दिवंगत होने के बाद अटल बिहारी बाजपेयी को आदर, सम्मान और श्रद्धांजलि दी जा रही है क्या वह पब्लिक सिम्पैथी हासिल करने के लिए नहीं है, क्योंकि बीमारी के नौ-दस साल के दौरान भाजपा के लगभग सभी बड़े नेता नियमित रूप से उनकी कुशलक्षेम पूछने तक नहीं जाते थे। हाँ, जन्मदिन आदि कुछ अवसर अवश्य अपवाद थे। यही व्यवहार पिछले कई वर्षों से कोमा में चल रहे जसवंत सिंह के साथ पार्टी कर रही है। यहाँ एक और बात पर गौर करना जरूरी है कि अगर बीमारी के कारण अटल भी आडवाणी की तरह सक्रिय राजनीति से दूर नहीं हो गए होते तो क्या उनका भी हाल आडवाणी जैसा नहीं कर दिया जाता। आखिर उनसे राजधर्म सिखाने का बदला भी तो लेना होता और मुख्यमंत्री पद से हटाने की तैयारी का सबक भी तो सिखाना होता।

आडवाणी की रथ यात्रा के दौरान की तस्वीरों को देखिए तो कुछ में आडवाणी बोल रहे हैं तो मोदी उनका माइक थामे हुए हैं। अटल के साथ मिलकर संगठन को केन्द्रीय सत्ता तक लाने में आडवाणी के योगदान से सभी परिचित हैं। मोदी की मुख्यमंत्री वाली कुर्सी बचाने में उनकी भूमिका को भी लोग बाग जानते हैं। यह भी सच है कि वह बाजपेयी के बाद प्रधानमंत्री बनना चाहते थे। लेकिन 2004 में इंडिया शाइनिंग और 2009 में मजबूर प्रधानमंत्री या मजबूत प्रधानमंत्री का भाजपा का नारा जब काम नहीं आया तो वह हताश दिखे। फिर 2013 में जिस तरीके से उन्हें साइड लाइन कर मोदी को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया गया वह उनके लिए उस फोड़े जैसा था जो न पकता है और न बैठता है लेकिन रह-रहकर दिन-रात सोते जागते पीड़ा बहुत देता है। इसी पीड़ा को झेलते हुए उन्होंने अपना इस्तीफा दे दिया-

प्रिय श्री राजनाथजी,

जीवन भर जनसंघ और भारतीय जनता पार्टी के लिए काम करना मुझे इज्जत और बेइंतिहा सुकून की वजह लगता रहा। पिछले कुछ समय से मुझे पार्टी के मौजूदा काम करने के तरीके और जिस दिशा में पार्टी जा रही है उससे तालमेल बिठाने में मुश्किल हो रही है। मुझे नहीं लग रहा है कि पार्टी डॉ मुखर्जी, दीनदयालजी, नानाजी और बाजपेयीजी के आदर्शों वाली बीजेपी है जिसकी एक मात्र चिंता देश और उसकी जनता थी। आज के हमारे अधिकतर नेताओं के निजी एजेंडे हैं, इसलिए मैंने राष्ट्रीय कार्यकारिणी, संसदीय बोर्ड और चुनाव समिति से इस्तीफा देने का फैसला किया है। इसे मेरा त्याग पत्र समझा जाए।

आपका

लालकृष्ण आडवाणी

जून 2013 में गोवा में राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक चल रही थी। शायद आडवाणी की अनुपस्थिति में वह पहली राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक थी। वहां बैठक अपने नतीजे की ओर बढ़ रही थी तो यहां दिल्ली में आडवाणी अपना इस्तीफा लिख रहे थे। आडवाणी खेमे को उम्मीद थी कि इस्तीफा देने के साथ आडवाणी लड़ेंगे। अपनी बात दृढ़ता से रखेंगे। लेकिन उन्होंने इस्तीफा वापस लेकर लोगों को भ्रम में डाल दिया। एक साल बाद हुए आम चुनाव में भाजपा को अपार सफलता मिली। संगठन के प्रमुख नेताओं के हाव भाव देखकर आडवाणी ने भी मोदी की तारीफ की। इसी दरमियान राजनैतिक हलकों में उन्हें राजपथ भेजने की बात चली। आडवाणी ने भी माहौल देखा। अपना मन मारकर सरकार के दो साल पूरे हुए तो कह ही दिया कि देश की जनता ने जिस उम्मीद से मोदी में विश्वास जताया था उस पर मोदी सरकार खरा उतर रही है। वह सब कह रहे थे, पर यह नहीं कह रहे थे कि अब सक्रिय राजनीति से सन्यास ले रहा हूं। यह बात सही है कि संगठन की नींव डालने वाला और उसे खाद पानी देने वाला एक सिपाही अंत तक अपना सर्वस्व देना चाहता है इसलिए वह उस जिम्मेदारी को नहीं छोड़ता। पर, अगर वह समय रहते यह काम अगली पीढ़ी वाले मजबूत कंधों वाले सिपाहियों को सौंप दे तो उसका कद कहीं ज्यादा बढ़ जाता है। यह बात एक बड़े संगठन से लेकर एक छोटे परिवार तक लागू होती है। इसलिए आडवाणी राजनाथ को लिखी चिट्ठी पर अमल करते तो वह कहीं ज्यादा बड़े सिपाही बनते।

यह मुश्किल काम होता है। सोचकर देखिए कि जिस संगठन को खून पसीना एक कर बनाया हो। उसे चलाया हो। विस्तार दिया हो। उसी के बारे में न्यूज चैनलों और अखबारों के जरिए यह पता चले कि उनके युग की समाप्ति हो गई है तो कैसा लगेगा। आने वाले उस एकाकीपन के बारे में सोचकर एकबारगी डर लगेगा। नरेन्द्र मोदी और अमित शाह वाली नई भाजपा में अटल-आडवाणी-जोशी का युग समाप्त हो रहा था। पार्टी कार्यकर्ता भाजपा की तीन धरोहर-अटल आडवाणी मुरली मनोहर और अटल आडवाणी कमल निशान-मांग रहा है हिन्दुस्तान जैसे नारों को भुला चुके थे। वह 21वीं सदी वाली भाजपा में क्रिकेट के मैदान की तरह धोनी धोनी और कोहली कोहली की तर्ज पर मोदी मोदी के नारे लगा रहे थे या उनसे लगवाए जा रहे थे। ऐसे माहौल में लालकृष्ण आडवाणी और मुरली मनोहर जोशी सरीखे नेताओं के प्रति दल में कौन सहानुभूति दिखाने का जोखिम उठाता। पार्टी से बाहर निकाल नहीं सकते थे सो मार्गदर्शक मंडल नामक एक रास्ता निकाला गया। यह कुछ उसी तरह का था जैसे बड़ी कंपनियों में कुछ अफसर ऐसे होते हैं जिन्हें हटाया भी नहीं जाता और रखा भी नहीं जाता। उनके लिए कुछ पद गढ़ लिए जाते हैं। दफ्तर के कोने वाले कमरे में शिफ्ट कर दिए जाते हैं। इन पदों पर उन्हें भेजकर एक तरह से ठिकाने लगाया जाता है। कुछ दिन तक लोग समझ ही नहीं पाते कि उनकी भूमिका क्या है। वह खुद भी अपनी भूमिका के बारे में नहीं जान पाते। इस न जानने वाली भूमिका के चक्कर में लोग उनका हालचाल पूछना बंद कर देते हैं। उनसे मिलते तक नहीं हैं। उनके लिए यह इशारा होता है कि वह कंपनी से विदा ले लें। कमोबेश यही प्रक्रिया भाजपा में लागू की गई, जिसके तहत अटल बिहारी बाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, नरेन्द्र मोदी और राजनाथ सिंह उस मंडल में रख दिए गए। इसमें मोदी और राजनाथ तो संसदीय बोर्ड और चुनाव समिति के सदस्य भी हैं। अटल स्वास्थ्य कारणों से सक्रिय नहीं थे। ऐसे में असलियत में देखा जाए तो केवल दो लोगों आडवाणी और जोशी के लिए यह मंडल बनाया गया था। पहली बात तो इस मंडल की कोई बैठक अब तक नहीं हुई और हुई भी होगी तो मार्गदशक मोदी और राजनाथ अपने दो दर्शकों आडवाणी और जोशी को सामने बैठाकर उनका मार्गदर्शन करते होंगे।

भाजपा ने जिस मार्गदर्शक मंडल का गठन किया था उसका भाजपा के संविधान में जिक्र तक नहीं है। भाजपा का संविधान कहता है कि संसदीय बोर्ड खुद संगठन की अन्य इकाइयों के लिए मार्गदर्शक का काम करेगा। वैसे घरों की बात की जाए तो मार्गदर्शकों को मुख्य गेट के पास वाले छोटे से कमरे में पहुंचा दिया जाता है। उस कमरे से सबसे नजदीक गेट होता है। ऐसे ही कमरों में भाजपा ने अपने संस्थापक आडवाणी और जोशी को पहुंचा दिया। एक तरह से गेट पर खड़ा कर दिया। इससे वह बाहर जा सकते हैं लेकिन अंदर किसी कीमत पर नहीं आ सकते। मुरली मनोहर जोशी को मोदी के लिए बनारस छोड़ना पड़ा। बेमन से कानपुर गए। खैर जीत भी गए। लेकिन उम्र के कारण सरकार में शामिल नहीं किए गए। गौर करने वाली बात यह है कि 87 साल के बलरामदास टंडन छत्तीसगढ़ के राज्यपाल बन जाते हैं और 82 साल के कल्याण सिंह राजस्थान के राज्यपाल बना दिए जाते हैं, लेकिन 80 साल वाले जोशी को पूछा तक नहीं जाता और 88 साल के आडवाणी को तो ऐसा दरकिनार किया जाता है कि देखने वालों तक को दया आ जाती है। ऐसी ही दरकिनार करने वाली एक घटना गत 9 मार्च को देखने को मिली जब प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी त्रिपुरा में राजधानी अगरतला के असम राइफल्स ग्राउंड में बिप्लव देव के नेतृत्व में भाजपा सरकार के शपथ ग्रहण समारोह में हिस्सा लेने पहुंचे। उनके मंच पर पहुंचते ही सभी नेता उनका अभिवादन करने के लिए खड़े हो गए। इसमें अमित शाह, राजनाथ सिंह, माणिक सरकार, लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी सहित भाजपा शासित अनेक राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल थे। मंच से गुजरते हुए मोदी ने सभी के अभिवादन का जवाब दिया। आडवाणी के बगल में खड़े त्रिपुरा के लंबे समय तक मुख्यमंत्री रहे माणिक सरकार से गर्मजोशी से मिले, लेकिन उनके बगल में हाथ जोड़े खड़े आडवाणी को अनदेखा कर आगे बढ़ गए। आडवाणी उन्हें देखते ही रह गए। इस वाकिए का उस समय एक वीडियो भी जारी हुआ जो सोशल मीडिया पर खूब वायरल हुआ।

राजनीतिक हलकों में इस बात को लेकर चर्चा भी रही कि मोदी कई मौकों पर इस तरह आडवाणी की कथित रूप से अनदेखी कर चुके हैं। बताते हैं कि यह बदले का मामला है। प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार घोषित होने के बाद मोदी की आडवाणी भी उपेक्षा कर चुके हैं। इससे जुड़ी एक घटना भोपाल में हुए पार्टी के कार्यकर्ता महाकुंभ की है। यह पहला मौका था कि जब प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार बनने के बाद मोदी और आडवाणी पार्टी के कार्यक्रम में सार्वजनिक मंच पर एक साथ नजर आए थे। मंच पर मोदी ने दो बार अपना भाषण देने से पहले और बाद में आडवाणी के पैर छुए, लेकिन दोनों ही बार आडवाणी ने मोदी पर ध्यान नहीं दिया। संगठन में दिन पर दिन आडवाणी के कम हुए रुतबे की बात करें तो उसमें जून 2005 से ही गिरावट आने लगी थी जब पाकिस्तान जाकर उन्होंने जिन्ना संबंधी बयान दिया था। इस बयान से उनकी पार्टी पर पकड़ कम होने लगी थी और संघ में भी उनकी छवि को संदिग्ध नजरों से देखा जाने लगा था। हालांकि आडवाणी ने वह बयान जान बूझकर दिया था। गठबंधन सरकारों का माहौल देखते हुए वह कट्टर हिन्दूवादी वाली अपनी छवि से बाहर आकर एक उदारवादी व्यक्तित्व का चोला पहनना चाहते थे। कुछ इसी तरह के चोले ने अटल बिहारी को करीब दो दर्जन दलों वाली गठबंधन सरकार का मुखिया बना दिया था।

एक नहीं अनेक बार आडवाणी को अपना राजनीतिक गुरु बताने वाले मोदी और उनकी भाजपा में गुरु के साथ ऐसा अपमानजनक सुलूक क्यों किया जा रहा है? पिछले करीब साढ़े चार साल से भाजपा में महज दो लोग क्यों हावी हो गए? वह उसे अपने निजी संगठन की तरह क्यों चलाने लगे? क्या इसे पार्टी में सहर्ष स्वीकार कर लिया गया है या अंदरखाने चिंगारी सुलग रही है? क्या वह चिंगारी किसी खास मौके का इंतजार कर रही है जो उचित अवसर मिलते ही धमाका करेगी। ऐसे अनेक सवाल हैं जो पार्टी के अंदरखाने खदबदा रहे हैं। ऐसे ही कारणों से आडवाणी के प्रति सहानुभूति नहीं दिख रही है। आडवाणी ही क्यों जिन अटल बिहारी बाजपेयी को महान बताया जा रहा है उनके विशेष दूत रहे सुधीन्द्र कुलकर्णी, यशवंत सिन्हा, जसवन्त सिंह, अरुण शौरी, गोविन्दाचार्य, तरुण विजय आदि अनेक नेताओं का पार्टी में कहीं कोई नामलेवा नहीं है। आज भाजपा में पढ़े लिखे लोगों का अकाल है, लेकिन अटल-आडवाणी की जोड़ी ने इस बात को ध्यान में रखकर एक पूरी लॉट तैयार की थी, जिसे मोदी और अमित शाह वाली भाजपा में किनारे ठेल दिया गया है। वह पढ़े लिखे हैं। जाहिर है कि वे अनेक मसलों पर सवाल उठाएंगे और आज की भाजपा में सवाल उठाना कथित रूप से अपराध माना जाता है।

ऋषिपाल चौहान
चेयरमैन, जीवा पब्लिक स्कूल

आत्मा और शिक्षा

आत्मा और शिक्षा का समन्वय बालक मन गीली मिट्टी की तरह होता है उसे जिस साँचे में ढाला जाए वह उसी का आकार ले लेता है। यह साँचा अच्छे और संस्कारी गुण वाला भी हो सकता है और संस्कार विहीन कुरूप भी हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बाल्यावस्था में प्राप्त हुई शिक्षा का हमारे ऊपर बहुत प्रभाव रहता है। आज के इस तेजी से बदलते परिवेश में बच्चों की सोचने, विचारने व समझने की क्षमता भी प्रभावित हो रही है। ऐसे समय में बच्चों को उचित संस्कार देने की आवश्यकता है। मानव जीवन में आंतरिक सजगता महत्वपूर्ण है जिसमें आत्मा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आत्मा ही मनुष्य को बाहरी संसार के साथ जोड़ती है। मनुष्य जीवन जीने के लिए जो श्वसन क्रिया भी करता है तो यह क्रिया भी आत्मा के ऊपर ही निर्भर है। आत्मा ही हमें जीवन को जीने के लिए शक्ति प्रदान करती है एवं दिशा-निर्देश देकर संसाररूपी सड़क पर चलने के लिए प्रेरित करती है। मनुष्य जीवन को उचित ढंग से जीने के लिए आत्मिक शान्ति एवं आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता होती है जो हमें आत्मा की प्रेरणा से मिलती है।

मनुष्य के लिए आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके बगैर लोग जीवन में भटक जाते हैं। आत्मा ही हमें प्रीति का अनुभव कराती है। जहाँ प्रीति होती है वहाँ त्याग होता है, वहाँ प्रेम एवं क्षमा होती है। अत: हम बच्चों को सिखायें कि स्वयं के लिए सोचना ज़रूरी है परंतु समाज के लिए त्याग एवं प्रेम भी ज़रूरी है। आज के युग में उच्च तकनीक का बोलबाला है। आज हर आयु वर्ग के लोग इन सब सुख सुविधाओं का प्रयोग करते हैं परन्तु सभी में आत्मिक ज्ञान की कमी है इसलिए मनुष्य के लिए आवश्यक है शिक्षा में आत्मिक ज्ञान का समन्वय हो। इसी ज्ञान की कमी के कारण मनुष्य तनावग्रस्त है और अवसाद में भी है। यदि शिक्षा में आत्मिक ज्ञान का समन्वय हो जाए तो यह स्थिति समाप्त की जा सकती है।